विद्यापति

Lecture - 19

20-04-2020

डॉ० अनिरुद्ध सिंह
हिन्दी विभाग

स्नातक हिन्दी प्रतिष्ठा प्रथम वर्ष
हिन्दी साहित्य का इतिहास

जन्म - 1352 ई० - बिस्फी, मधुबनी, बिहार - 1360

निधन - 1448 ई० - 1480

भाषा - मैथिली, अवहट्ठ, संस्कृत

विधा - पद, गीत

प्रमुख रचनायें -
1 - पुरुष परीक्षा
2 - लिखनावली
3 - भू - परिक्रमा
4 - विभागसार आत्मकथा
5 - दानवाक्यवली
6 - गंगावाक्यवली
7 - वर्षकृत्य
8 - दुर्गाभक्ति तरंगिणी
9 - शैवसर्वस्वहार
10 - कीर्ति पताका
11 - कीर्तिलता

Scanned with CamScanner

इतिहासकारों के बीच प्रायः मान्य है कि विद्यापति सन्
1360 ई. से 1480 ई. के बीच मौजूद थे। अनेक दृष्टियों से
यह संक्रमण - काल माना जाता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
ने विद्यापति को न तो वीरगाथा काल में रखा है और
न भक्ति काल में। अनेक इतिहासकारों ने आचार्य शुक्ल
की इतिहास लेखन पद्धति की आलोचना करते हुए इसी
बात को अपना दृष्टांत बनाया है कि इतिहास में
विद्यापति का स्थान तय करने के लिए आचार्य रामचन्द्र
शुक्ल को फुटकल खाता खोलना पड़ा। लेकिन यह
ऐतिहासिक वास्तविकता है कि विद्यापति संक्रमण-काल के
कवि हैं। विद्यापति की रचनाओं की अंतर्कथा एवं
अंतर्वस्तु पर तथा साहित्य, समाज और राजनीति के
इतिहास पर ध्यान देने से संक्रमण की प्रक्रिया और
विद्यापति की रचनात्मक विशेषताओं के बीच घना संबंध
दिखायी पड़ता है। प्रवृत्तियों की दृष्टि से वे हिंदी साहित्य
के इतिहास में न वीरगाथा के कवि हैं और न भक्ति
आंदोलन के। यों कीर्तिलता और कीर्तिपताका में भी
उन्होंने अपने चरित नायकों की वीरता का वर्णन

Scanned with CamScanner

किया है। और यह वर्णन रोमांचक वीरता से भरपूर है और उनके पूरे काव्य में भक्ति के भी ढेर सारे पद हैं। भक्ति भावना होने के बावजूद वे भक्ति आंदोलन के अंग नहीं है, क्योंकि उनकी भक्ति-भावना में आंदोलन की चेतना नहीं है। इन बातों से परे विद्यापति मूलत: शृंगारिक कवि हैं। जो लोग विद्यापति की पदावली का भक्तिपरक अर्थ निकालने की कोशिश कर रहे थे, उन पर व्यंग्य करते हुए आ० रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'इतिहास' में लिखा है कि 'आजकल आध्यात्मिकता रंग के चश्में बहुत सस्ते हो गये हैं।' अत: विद्यापति की मूल प्रवृत्ति और उनके समय की विकासमान प्रवृत्ति में एक तरह से अंतर्विरोध था। यही साहित्यिक एवं ऐतिहासिक कारण है कि आचार्य शुक्ल उन्हें फुटकल खाते में रखते हैं। इससे विद्यापति का काव्यात्मक या ऐतिहासिक महत्त्व बिल्कुल कम नहीं होता, बल्कि उनकी विशिष्टता ही प्रमाणित होती है। वे युगांतर के कवि थे।

विद्यापति की भाषा-

विद्यापति की मातृभाषा और मिथिला की सामाजिक-सांस्कृतिक भाषा भी मैथिली ही थी। यों मिथिला में विद्वानों के बीच संस्कृत की भी प्रतिष्ठा थी।

Scanned with CamScanner

विद्यापति ने सर्वाधिक महत्वपूर्ण रचना पदावली मैथिली में ही रची। मिथिला की विद्वत परम्परा को मानकर उन्होंने संस्कृत में भी रचना की। लेकिन अवहट्ठ में कीर्तिलता और कीर्तिपताका की रचना करने के पीछे यही बात प्रेरणा के रूप में काम कर रही होगी कि अपभ्रंश उस समय भी उत्तर भारत के राष्ट्रीय संदर्भ की भाषा थी और विद्यापति का रचनाकार केवल अपने क्षेत्र तक सीमित नहीं था।

जनभाषा का निर्माण-

भाषा की दृष्टि से भी विद्यापति संक्रमण काल में पड़ते हैं। अपभ्रंश का प्रभाव या अपभ्रंश में काव्य रचने की प्रवृत्ति लगभग समाप्त हो रही थी और आधुनिक आर्य भाषाओं का साहित्यिक उदय हो रहा था। भाषा, समाज और काव्य-सृजन के विकास की ऐतिहासिक प्रक्रिया पर गौर करने से यह स्पष्ट होता है कि जब कोई भाषा काव्यात्मक गरिमा पा लेती है और उसका ~~रूप~~ परिनिष्ठित रूप शास्त्रीय स्तर पर लेता है तो सामान्य जनता या कहें सामान्य जन-मानस के लिए वह रूप दुरूह होने लगता है। जन-चेतना का प्रवाह आमफहम भाषा के साथ आगे बढ़ता रहता है। सामान्य जन के चेतना-प्रवाह

Scanned with CamScanner

और परिनिष्ठित या रूढ़ काव्य - भाषा का अंतर्विरोध नए दौर के रचनाकारों के द्वारा रूढ़ि को तोड़कर और प्रवाह के आग्रह को स्वीकार करके ही हल किया जाता है।

ऐसे साधारण जन थे जो संस्कृत तो नहीं जानते थे, लेकिन जन-भाषा में रचित काव्य में रुचि लेते थे। ऐसे ही साधारण जनों के लिए अद्दहमाण ने अपभ्रंश में काव्य रचना की। यही साधारण जन है जिनकी चेतना के प्रवाह के साथ विकसित भाषा रचनात्मकता की नई समस्या को हल करती है। इसी से मिलती-जुलती बात विद्यापति भी कहते हैं -

'सक्कअ बाणी बुहअज भावइ पाइअ रस को मम्म न पावइ।
देसिल बयना सब जन मिट्ठा, तें तैसन जंपऊ अवहट्ठा।।'

अर्थात संस्कृत वाणी को बुधजन (पंडित लोग) ही अच्छी तरह समझते हैं, प्राकृत भाषा के रस का मर्म कोई नहीं पाता है। देसी वचन (बोली) सब लोगों को मीठी लगती है, अतः वैसे अवहट्ठ का कथन करता हूँ।

भाषा और समाज के संबंध का संक्रमण यहाँ अच्छी तरह दिखायी पड़ता है। संस्कृत पंडितों तक सीमित रह गई थी और प्राकृत का मर्म तो कोई नहीं समझता

था, क्योंकि पंडित तो उसकी उपेक्षा करते थे और आम जनता उसे समझ नहीं पाती थी। बोधगम्यता और आत्मीयता के कारण देसी वचन यानी गाँवों के लोगों की बोली तो सबको मीठी लगती है। इसलिए विद्यापति अवहट्ट को देसी बोली के साथ मिलकर उसमें रचना करते हैं। कवि का उद्देश्य रचना को अधिकाधिक प्रेषणीय बनाना है। इसलिए वह पंडिताऊ भाषा को जनता की बोलचाल की भाषा के नज़दीक ले जाता है।

Scanned with CamScanner